Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

काव्यप्रकाश के आलोक में कालिदास समीक्षा

डॉ. नंदिता मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर,संस्कृत विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, महाराजगंज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number : 295-303
Publication Issue :
September-October-2020
Article History
Accepted : 20 Sep 2020
Published : 30 Sep 2020

सारांश – महाकवि के प्रति इस प्रकार की दोष दृष्टि का भी निवारण हो जाता है। जहाँ तक काव्यप्रकाशकार के बारे में कहा जा सकता है तो वे एक लक्षणग्रन्थकार हैं उसी दृष्टि से शास्त्र का निरूपण करते हैं और उदाहरण में अनेकानेक कवियों का उल्लेख करते हैं। उनकी स्वयं की दृष्टि में महाकवि कालिदास एक अद्वितीय कवि हैं जिनके लिए स्वयं उन्हें लिखना पड़ता है कालिदासादीनामिव यशः। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार्य मम्मट की दृष्टि में भी महाकवि कालिदास असंदिग्ध रूप से महाकवि है।

मुख्यशब्द – काव्यप्रकाश, कालिदास, दोष, शास्त्र, लक्षणग्रन्थ, मम्मट।

आचार्य मम्मट की दृष्टि से महाकवि कालिदास की समीक्षा महाकवि की प्रशस्ति के ही सदृश है। काव्यशास्त्र की परम्परा में प्रायः आचार्यों ने कालिदासीय पद्यों का उदाहरण लक्षण ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। यह महाकवि के काव्यों का महत्त्व ही है कि इनके काव्यों में दोष से लेकर रस का निरूपण करने के लिए आचार्य इनका उल्लेख करते हैं। मम्मट के पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी जैसे आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त प्रभृति[1] आचार्यों ने अत्यन्त विश्वासपूर्वक कालिदास का उल्लेख किया है। प्रायः काव्यों के विभिन्न सम्प्रदायों के अन्य आचार्यों के द्वारा भी कालिदास के उद्धरण निदर्शन के रूप में दिए गए हैं। जिनमें कतिपय पद्य तो अत्यन्त प्रसिद्ध है और विभिन्न सिद्धान्तों के प्रतिपादन में उन्हें देखा जाता है।[2] जैसे कि काव्यशास्त्र की परम्परा में काव्य घटक तत्त्वों अलंकारादि के तथा त्याज्य दोष आदि के निर्वचन में भी आचार्यों की प्रतिपादन शैली भिन्न–भिन्न है। काव्य प्रकाशकार ने प्रायः सम्पूर्ण काव्यप्रकाश में कालिदास के पद्यों का उदाहरण दिया है, जिनमकी संख्या लगभग 30–32 है। इनमें से भी दोष के उदाहरण के रूप में अधिक पद्य है। इनका विवरण निम्न प्रकार समझा जाना चाहिए

प्रसंग	उदाहरण	पृ0 सं0 काव्यप्रकाश[3]
1. विप्रलभ (शाप)	त्वामालिख्य मेघदूत मेघदूत, उ0 मे0 / 47	142
2. भयानक रस	ग्रीवाभंगाभिरामं शाकुन्तल, 1/7	148
3. भावशबलता	क्वकार्यं शशलक्ष्मणः विक्रमोर्वशीयम्, प्रक्षिप्त	165
4. सन्दिग्धप्राधान्य	हरस्तुकिञ्चित् कुमारसम्भव, 3/67	247
5. अवाचक दोष	हा धिक् सा कि विक्रमोर्वशीयम्, प्रक्षिप्त मृदुपवनविभिन्नों	320
6. अमंगल अश्लील	मृदुपवनविभिन्नो विक्रमोर्वशीयम्, 4/22	320
7. अविमृष्टविधेयांश	स्रस्तां नितम्बादवरोपयन्ती कुमारसम्भव, 3/55	327
8. अविमृष्टविधेयांश	वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता कुमारसम्भव, 5/72	328

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

9. प्रसज्यप्रतिषेध नञ् (उचित प्रयोग)	विक्रमोर्वशीयम्, 4/7 जुगोपात्मानमत्रस्त्रो	330
10. पर्युदास नञ् (उचित प्रयोग)	रघुवंश, 1/21 कातर्यं केवला नीति	343
11. प्रक्रान्त (तत् का यत् की अपेक्षा न रखना)	कातर्यं केवला नीति रघुवंश, 17/47	344
12. प्रसिद्ध (तत् का यत् की अपेक्षा न रखना)	द्वयं गतं सम्प्रति कुमारसंभव, 5/71	354
13. श्रुतिकटुपदैकदेश	तद्गच्छ सिद्ध्यै कुमारसंभ, 3/18	354
14. पदैकदेश निहितार्थ	यश्चाप्सरोविभ्रमण्डनानां कुमारसंभव, 1/4	355
15. अनभिहित वाच्य	त्वयि निबद्धरतेः विक्रमोर्वशीयम् 4/55	381
16. सर्वनामप्रक्रमभंगदोष	ते हिमालयामन्त्र्य कुमारसंभव, 6/49	389
17. पर्यायप्रक्रमभंगदोष	महीभृतः पुत्रवतोऽपि कुमारसंभव, 1/27	390
18. कारकप्रक्रमभंगदोष	गाहन्तां महिषा शाकुन्तल, 2/6	392
19. अमतप्रकम विरूद्ध	राममन्मथशरेण रघुवंश, 11/20	396
20. दोष का अपवाद	ज्याबन्धनिष्पन्द भुजेन रघुवंश, 6/40	425
21. ख्यात अर्थ में निर्हेतु की अदुष्टता	चन्द्रं गता पद्मगुणान्न कुमारसम्भव, 1/43	428
22. कष्टत्व का गुणत्व	रक्ताशोक कृशोदरी विक्रमोर्वशीयम्, 4/62	432
23. न गुण न ही दोष	तिष्ठेत कोपवशाद् विक्रमोर्वशीयम्, 4/9	441
24. अंगभूत रस दोष	दीप्ति पुनः पुनः कुमारसम्भव, प्रक्षिप्त	454
25. प्रकृतिविपर्यय	क्रोधं प्रभो कुमारसम्भव, 3/72 दशम उल्लास	457
26. ससंदेह	अस्याः सर्गविधौ विक्रमोर्वशीयम्, 1/100	472
27. वाक्यार्थ निदर्शना	क्व सूर्य प्रभवो रघुवंश, 1/2	588
28. समुच्चय	अयमेकपदे तया विक्रमोर्वशीयम्, 4/10	644
29. विशेष	गृहिणी सचिवः रघुवंश, 8/67	685
30. कालादि भेद से भग्न प्रक्रमता दोष	अतिथिं नाम रघुवंश, 17/1	713
31. अनुचितार्थत्त्व दोष	दिवाकराद्रक्षति कुमारसम्भव, 1/12	718

इस प्रकार मम्मट के काव्यप्रकाश में दोषों के उदाहरण के रूप में ही अधिक पद्यों को उदाहृत किया गया है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं लिया जा सकता कि आचार्य मम्मट की दृष्टि में कालिदास की कविता दोषपूर्व है अपितु मम्मट द्वारा प्रथमोल्लास में कालिदासादीनामिव यशः को ही प्रमाण मानना चाहिए क्योंकि कालिदास ही मम्मट की दृष्टि में यशस्त्री कवि है। अर्थात् एक कवि के रूप में जितना यश कालिदास का है उतना किसी अन्य का नहीं। काव्यकारण को स्पष्ट करने के क्रम में महाकविसम्बन्धिनां के स्पष्टीकरण में साहित्यचूड़ामणि में कुमारसम्भव[4] तथा सुधासागर में रधुवंश[5] को उदाहृत किया गया है। वस्तुतः कालिदास के प्रति आलंकारिक आचार्यों में ऐसा ही मानने की परम्परा है। मम्मट ने जितनी मान्यता ध्वनिकार को दी है उसके अनुसार आनन्दवर्धन भी कालिदास को ही

महाकवि मानते है। आनन्दवर्धन की दृष्टि में भी कालिदास ही यशस्वी कवि है।[6] अतः महाकवि कालिदास के प्रति मम्मट भी उतने ही श्रद्धावान और विश्वस्त हैं, ऐसा कहा जाना उचित होगा। काव्यप्रकाश के अनुसार कालिदास की समीक्षा करने से पहले कुछ कह सकते है कि दोषों का अभाव ही गुण हो जाता है। इस दृष्टि से भोज आदि की दृष्टि में दोष अनित्य हुआ करते हैं। पुनश्च कहीं ये ही दोष गुण के भी प्रकार में दिखाई देते हैं। इस प्रकार मम्मट के द्वारा दोषों के उदाहरणों के रूप में दिये गए कालिदासीय पद्यों पर अत्यन्त सावधान होकर विचार किया जाना चाहिए। यद्यपि हम इसकी चर्चा आगे करेंगे तथापि अनेक आचार्यों और विद्वानों ने कालिदास के साहित्य में स्खलद्गतित्त्व पर विमर्श किया है और कुछ ने उनका निराकरण भी दिखाया है। अतः कालिदास के दोषों की चर्चा विद्वत् समाज में अत्यन्त महत्त्व की वस्तु बन गई। यथाक्रम हम उनका निरूपण करेंगे किन्तु काव्यप्रकाश के उल्लासक्रम से कालिदास के पद्यों पर यहाँ विचार किया जाना उचित होगा। सर्वप्रथम चतुर्थ उल्लास में तीन उदाहरण कालिदास के प्राप्त होते हैं जिनमें प्रथम विप्रलम्भ श्रृगांर दूसरा भयानक रस तथा तीसरा पद्य भावशबलता का है। यद्यपि भावशबतला का उदाहरण प्रक्षिप्त है तथापि मम्मट से पूर्व अभिनव गुप्त आदि आचार्यों ने भी विक्रमोर्वशीयम् के इस पद्य को उदाहृत किया है।[7] श्रृगांर के दो भेद सम्भोग और विप्रलम्भ का निर्वचन करते हुए प्रथम को अनन्त प्रकार का मानते हुए द्वितीय के पाँच प्रकार मम्मट ने बताए।[8] विप्रलम्भ श्रृंगार के पाँच प्रकारों में शापहेतुक विप्रलम्भ के उदाहरण के रूप में मेघदूत का निम्न पद्य मम्मट ने उदाहृत किया है

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायामात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते में क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगम नौ कृतान्तः।।[9]

यद्यपि मम्मट ने इसकी कोई व्याख्या नहीं की किन्तु टीकाकारों ने पर्याप्त विचार किया है। सामान्य विद्धान्त के अनुसार नायिका आलम्बन है और उसका प्रणय कोप उद्दीपन है। पैरों में गिरना अनुभाव तथा कृतान्त के प्रति असूया व्यभिचारी भाव है। इन सबसे निष्पन्न होने वाली रति स्थायी भाव है।

भयानक रस के लिए शाकुन्तल के निम्न पद्य को मम्मट ने उदाहृत किया है –

ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः पश्यार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरार्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।[10]

काव्य प्रकाश के अनुसार इस पद्य में मृग का भय वर्णित है। यद्यपि काव्यप्रकाश में इसकी कोई व्याख्या नहीं है तथापि सामान्य सिद्धान्त के अनुसार मृग के पीछे चलने वाला राजा आलम्बन, शरपतन की सम्भावना उद्दीपन, बारम्बार ग्रीवाभंगादि अनुभाव तथा मृग के श्रम आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबसे उत्पन्न भय स्थायी भाव है।

पचंम उल्लास में गुणीभूतव्यंगय के सन्दिग्धप्राधान्य नामक भेद के उदाहरण के रूप में कुमार सम्भव के तृतीय सर्ग का निम्न पद्य उद्धृत है

हरस्तु किञ्चित्परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।।[11]

मम्मट ने इस पद्य को सन्दिग्धप्राधान्य गुणीभूतव्यंगय प्रकार मानते हुए इसका व्याख्यान इस प्रकार किया है

अत्र परिचुम्बतुमैच्छदिति किं प्रतीयमानं किं वा विलोचनव्यापारणं वाच्यं प्रधानमिति सन्देहः।[12]

मेरी दृष्टि में यहाँ मम्मट के द्वारा अधरचुम्बन को व्यंग्य और लोचनत्रय के व्यापार को वाच्यार्थ माना गया है। यहाँ ये दोनों ही चमत्कारजनक है। अतः व्यंगयार्थ और वाच्यार्थ के चमत्कार की प्रधानता सन्दिग हो जाने से यह सन्दिधप्राधान्य गुणीभूतव्यग्य का उदाहरण हो गया। किन्तु यदि कुमारसम्भव में यह जहाँ है वही प्रसंग कुछ देर और निरन्तर बढ़ता जाता तो निश्चित रूप से यहाँ रति की ही व्यञ्जना होती। किन्तु अगले ही पल सारा प्रसंग ही बदल जाता है। अतः यहाँ व्यंगयार्थ जैसे ही चमत्कार की सम्भावना अभिधेयार्थ में सहृदय कर लेता है।

सप्तम उल्लास में व्रीडा, जुगुप्सा तथा अमंगल नामक तीन अश्लील[1] दोषों का निर्वचन करते हुए अश्लील[13] के उदाहरण के रूप में विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अंग का निम्न पद्य मम्मट द्वारा उदाहृत किया गया है –

मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया विनाशाद् घनरूचिरकलापो निः सपत्नोऽद्य जातः।
रतिगिगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्याः सति कुसुमसनाथे कं हरेदेष बर्ही।।[14]

इस पद्य में मम्मट ने अमंगल रूप अश्लील माना है क्योंकि विनाश शब्द मृत्यु का बोधक है। अतः मम्मट ने इसे अमंगल कहते हुए दोष माना है। किन्तु यदि इस पूरे प्रसंग को पुरूरवा की दृष्टि से देखा जाए तो यह पुरूरवा की दशा को उसकी पूरी योग्यता के साथ चित्रित करने वाला गुण माना जा सकता है। सुधासागर टीका के अनुसार भी भावी अमंगल की सूचना होने पर कामशास्त्र की स्थिति में दोष नहीं माना जाता।[15] अतः विनाश शब्द का विवक्षित अर्थ अमंगल होने पर भी इस प्रसंग में कामशास्त्र की दृष्टि से उसका दोषत्व समाप्त हो जाता है।

अविमृष्टविधेयांश दोष के प्रसंग में मम्मट ने कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग से निम्न पद्य उदाहृत किया है

स्रस्तां नितम्बादवरोपयन्ती पुनः पुनः केसरदामकाञ्चीम्।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्य।।[16]

मम्मट ने इस पद्य में अविमृष्टविधेयांश दोष मानते हुए इसका व्याख्यान निम्न प्रकार किया है

अत्र द्वितीयत्वमात्रमुत्प्रेक्ष्यम्। मौर्वीं द्वितीयामिति युक्तः पाठः।[17]

कुमारसम्भव के उक्त पद्य में द्वितीयत्व विधेय है। अतः उसे प्रधानतया प्रीत होना चाहिए था। किन्तु उत्तरपद प्रधान कर्मधारय समास में गौण हो जाने से वह प्रधान रूप से प्रतीत नहीं होता, अतएव यहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष उत्पन्न हो जाता है। यदि द्वितीयमौर्वीं के स्थान पर मौर्वीं द्वितीयां यह पाठ होता तो अविमृष्टविधेयांश दोष नहीं रह जाता।

अविमृष्टविधेयांश दोष के एक अन्य उदाहरण के रूप में मम्मट के कुमारसम्भव का निम्न पद्य उदाहृत किया है

विपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि, मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।।[18]

कुमारसम्भव के इस पद्य में शिव के जन्म की आलक्ष्यता ही विधेय है। किन्तु यह अलक्ष्यता अन्यपदप्रधान बहुव्रीहि समास में गौण हो जाने से प्रधानतया निर्दिष्ट नहीं होती है। अतः अविमृष्ट विधेयांश दोष उतपन्न हो जाता है। यदि इस पद्य में समस्त पद के स्थान पर अलक्षिता जनिः प्रयोग किया जाता तो यह दोष नहीं रहता। कुछ व्याख्याकारों का मत है कि शिव का जन्म ही असिद्ध है अतः यहाँ अलक्ष्यजन्म ही विधेय है अतः कोई दोष नहीं।[19]

मम्मट ने दोष प्रकरण में केवल दोषों को ही निर्दिष्ट करने में महाकवि के पद्यों का प्रयोग नहीं किया है अपितु उचित प्रयोग को निर्दिष्ट करने के लिए भी महाकवि के पद्यों को उदाहृत किया है। मम्मट ने नञ् समान में अविमृष्टविधेयांश दोष का निर्वचन करते हुए प्रसज्यप्रतिषेध नञ् तथा पर्युदास नञ् दोनों के ही उचित प्रयोग को निर्दिष्ट करने में महाकवि के पद्यों को उदाहृत किया है। प्रसज्यप्रतिषेध नञ् के उचित प्रयोग के लिए आचार्य ने विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अंक का निम्न पद्य उदाहृत किया है

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम्।
अयमपि पटुधीरासारो न बाणपरम्परा कनकनिकषस्निग्धा विद्युत प्रिया न ममोर्वशी।[20]

यहाँ विधेयांश के निषेधपरक होने के कारण नञ् का समासगत प्रयोग नहीं किया गया है जिससे विधेयांश प्रधानताया निर्दिष्ट हो रहा है। इस कारण यहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष नहीं है तथा प्रसाज्य प्रतिषेध नञ् का उचित प्रयोग है।

पर्युदास नञ् के उचित प्रयोग के लिए आचार्य ने रघुवंश के प्रथम सर्ग के निम्न पद्य को उदाहृत किया है –

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्मामनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थानसक्तः सुखमन्वभूत्।।[21]

इस पद्य में विधेयांश प्रतिषेधपरक है तथा नञ् का समासगत प्रयोग करने से कोई दोष उत्पन्न नहीं होता। अत्रस्त पद में पर्दुदास नञ् का प्रयोग है तथा विभिन्न क्रियाओं के साथ उसका विधान किया गया है।

सप्तम उल्लास में मम्मट ने पदांशगत श्रुतिकटु आदि दोषों के निर्वचन में पदैकदेश श्रुतिकटु के उदाहरण के रूप में कुमारसम्भव के तृतीयसर्ग का निम्न पद्य उदाहृत किया है –

तद् गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तर लभ्य एव।
अपेक्षते प्रत्ययमंगलब्ध्यै बीजांकुरः प्रागुदयादिवाम्भः।।[22]

कुमारसम्भव के उक्त पद्य में तारकासुर के वध हेतु कामदेव के प्रति इन्द्र की प्रार्थना वर्णित है। प्रार्थना में प्रायः मधुर भाषण ही शोभनीय होने के कारण सिद्ध्यै तथा लब्ध्यै पदों में पदांशगत श्रुतिकुट दोष उत्पन्न हो जाता है।

आचार्यों द्वारा पदों का क्रम विद्यमान न होने पर अक्रम दोष माना गया है। इस दोष के उदाहरण के रूप में मम्मट के कुमार सम्भव के निम्न पद्य को उदाहृत किया है –

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावतः त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी।।[23]

आचार्य मम्मट के अनुसार इस पद्य में त्वं शब्द के पश्चात् चकार का प्रयोग किया जाना चाहिए था।[24] अतः पदों में क्रम विद्यमान न होने के कारण इसे अक्रम दोष के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया।

आचार्यों के अनुसार कुछ स्थल ऐसे भी होते हैं जहाँ दोष, दोष न रहकर गुण के रूप में परिवर्तित हो जाते है। प्रकरण वशाद् दोष के गुणके रूप में परिणत हो जाने के उदाहरण के रूप में मम्मट ने पुरुरवा की निम्न उक्ति को उद्धृत किया है –

रक्ताशोक, कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वानुरक्तं जनं नो दृष्टेति चालयसि किं वातावधूनं शिरः।
उत्कण्ठाघटमानषट्पदघटासंघदष्टच्छदस्तत्पादाहतिमनतरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः।।[25]

यद्यपि इस पद्य में विप्रलम्भ श्रृगांर की व्यञ्जना होने से दीर्घसमास तथा परुष वर्णों का प्रयोग हस पद्य में दोष उत्पन्न कर देता तथापि प्रकरणवशाद् वह दोष, दोष न रहकर गुण के रूप में परिणत हो जाता है। पुरुष वर्णो का प्रयोग विप्रलम्भ के अंगभूत कोप को और अधिक प्रकर्ष प्रदान कर मुख्य रस को भी और अधिक चमत्कारी बना देता है।

आचार्यों के अनुसार कुछ स्थल ऐसे भी होते हैं जहाँ न गुण होता औरन ही कोई दोष होता है। इस प्रसंग में मम्मट ने उदाहरण के रूप में विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अंग से निम्न पद्य को उदाहृत किया है –

तिष्ठेत्कोपवशात्प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति स्वर्गायोऽपतिता भवेन्मयि पुनर्भावार्द्रमस्या मनः।
तां हर्तुं विबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं सा चात्यन्तमगोचरं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः।।[26]

उक्त पद्य में न तो गुण है न कोई दोष। पिहिता पद के अनन्तर नैतद्यतः पद न्यून होते हुए भी गुण नहीं है और बिना इस पद्य के भी उत्तरकालीन ज्ञान पूर्वज्ञान का बाध कर देता है अतः कोई दोष भी नहीं है।

दशम उल्लास में भी अलंकार निरूपण के प्रसंग में आचार्य मम्मट ने महाकवि के कई पद्यों के उदाहृत किया है। किन्तु शोध–पत्र विस्तार के भय से सभी उदाहरणों की समीक्षा सम्भव न होने के कारण कुछ ही पद्यों की समीक्षा यहाँ की जा रही है। ससंदेह अलंकार के उदाहरण के रूप में मम्मट ने विक्रमोर्वशीयम् के प्रथम अंग का निम्न पद्य उदाहृत किया है –

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः श्रृगरैकरसः स्वयं नु मदनो मासो न पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो निर्मातु प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।[27]

इस पद्य में प्रजापति के उपमान के रूप में चन्द्रमा, मदन तथा वसन्त को कहा गया है। किन्तु किसी के भी वैधर्म्य का कथन न होने के कारण यह ससन्देह अलंकार का उदाहरण बन जाता है।

वाक्यार्थ निदर्शना के उदाहरण के रूप में मम्मट नेरघुवंश के निम्न पद्य को उदाहृत किया है –

क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।[28]

इस पद्य में छोटी सी नौका से सागर तरण का उपयुक्त सम्बन्ध न होने के कारण उडुप सागर तरणके समान ही अल्पबुद्धि के द्वारा सूर्यवंश का वर्णन, कवि की यह उक्ति उपमा में परिणत हो जाती है।

दशम उल्लास में अलंकार निरूपण करने के पश्चात् आचार्य मम्मट ने अलंकार दोषों के निरूपण में भी महाकवि के पद्यों को उदाहृत किया है।

आचार्य मम्मट ने अलंकार में अनुचितार्थतत्त्व दोष दिखलाने के लिए कुमारसम्भव का निम्न पद्य उदाहृत किया है–

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवा भतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसामतीव।।[29]

इस पद्य में अचेतन अन्धकार का सूर्य से भय सम्भव न होने के कारण हिमालय से रक्षा की सम्भावना भी असम्भव ही है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा के समर्थन में अर्थान्तरन्यास का प्रयत्न व्यर्थ सा ही प्रतीत होता है। इस कारण मम्मट ने इस पद्य में अनुचितार्थतत्त्व नामक दोष की सम्भावना की है।

आचार्य मम्मट ने सम्पूर्ण काव्यप्रकाश में महाकवि के अनेक उदाहरणों के उदाहरणों को उदाहृत किया है। किन्तु शोध–पत्र के गौरव के भय से सभी पद्यों की समीक्षा न कर कुछ ही पद्यों की समीक्षा की गई है और अन्य समस्त पद्यों को पूर्व में तालिका के माध्यम से उल्लिखित कर दिया है।

निष्कर्षतः ऐसा कहा जाना उचित होगा कि आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में जिन–जिन स्थानों पर महाकवि की चर्चा की है उनसे महाकवि का श्रेष्ठ कवित्व ही सिद्ध होता है। यह हम महाकवि के प्रति किसी श्रद्धाभावना के अनुशीलन होकर नहीं अपितु तर्कश्रित बुद्धि पर कह सकते हैं। काव्यप्रकाश वस्तुतः एक ऐसा महान ग्रन्थ है जिसे संस्कृत काव्यशास्त्र की श्रेष्ठ समीक्षा पद्धति की भी दृष्टि से सम्मान प्राप्त है। आचार्य मम्मट जब काव्यांगो का निरूपण करते हैं तो उनके अनुसार उनके उदाहरण भी देते हैं उदाहरणों को अपने लक्षण निष्कर्ष पर रखते भी हैं और परखकर उसे साहित्य प्रेमियों के लिए भी देते हैं। इस दृष्टि से मम्मट का दोष, गुण, अलंकार, रस आदि विवेचन वस्तुतः एक श्रेष्ठ समीक्षा की प्रस्तुति भी है। इसके लिए अधिकाधिक बार मम्मट ने कालिदास का उद्धृत भी किया। काव्यप्रकाश के जिन उल्लासों में कालिदास के उदाहरण प्राप्त होते हैं उनमें सप्तम और दशम उल्लास अर्थात् दोष और अलंकार प्रकरण हैं। जबकि रस और ध्वनि के भेदादि के उदाहण के रूप में कुछ ही उदाहरण हैं किनतु सप्तम उल्लास में भी जहाँ कि दोषों के उदाहरण के रूप में कालिदास के पद्यों को मम्मट के द्वारा उद्धृत किया गया वहीं कालिदास के ही पद्यो से उनमें से कुछ का परिमार्जन भी दिखाया गया। अतः विधेयाविमर्श आदि दोषों के रहने पर भी महाकवि के महाकवित्व के प्रति सन्देह नहीं किया जा सकता। वस्तुतः मम्मट की पद्धति भिन्न है और कहीं–कहीं उनका ध्यान दोषों के अन्वेषण के प्रकरण आदि पर नहीं किया जा सकता। वस्तुतः मम्मट की पद्धति भिन्न है और कहीं–कहीं उनका ध्यान दोषों के अन्वेषण के प्रकरण आदि पर नहीं जा पाया है या यह कहें कि उनका यह मानना है कि इस

प्रकार दोष किसी भी दशा में नहीं होने चाहिये। जैसे कि द्वितीय मौर्वी आदि में जबकि टीकाकारों ने प्रकरण का अंग होने के कारण भाव विशेष की उपस्थिति के कारण ऐसे प्रसंगों में दोषों का होना नहीं माना है। यथा –

भाव्यमंगलादिसूचने कामशास्त्रस्थितौ च न दोषत्वम् वैमुख्याभावात्। शिवलिंग भगिनी–ब्रह्माण्डादिशब्देषु तु समुन्नीतगुप्तलक्षितेष्वसभ्यार्थानुपस्थितेर्नायं दोषः।[30]

अतः महाकवि के प्रति इस प्रकार की दोष दृष्टि का भी निवारण हो जाता है। जहाँ तक काव्यप्रकाशकार के बारे में कहा जा सकता है तो वे एक लक्षणग्रन्थकार हैं उसी दृष्टि से शास्त्र का निरूपण करते हैं और उदाहरण में अनेकानेक कवियों का उल्लेख करते हैं। उनकी स्वयं की दृष्टि में महाकवि कालिदास एक अद्वितीय कवि हैं जिनके लिए स्वयं उन्हें लिखना पड़ता है कालिदासादीनामिव यशः। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार्य मम्मट की दृष्टि में भी महाकवि कालिदास असंदिग्ध रूप से महाकवि है।

सन्दर्भ :

1. तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभितविहगश्रेणिरशना
विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम्।
यथाविद्धं याति स्खलितमभिसन्धाय बहुशो
नदीरूपेणेयं ध्रुवमसहना सा परिणत।। – ध्वन्यालोक, पृ0 212
(ख) तिष्ठेत्कोपवशात्प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति
स्वर्गायोत्पतिता भवेन्मयि पुनर्भावार्द्रमस्य मनः।
तां हर्तुंविबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरावेर्तिनीं
सा चात्यन्तमगोचरं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः।। – लोचन, पृ0 184
2. द्वयं गतं ....प्रभृति
यह पद्य आचार्य मम्मट ने स्वयं दोष प्रकरण में दो बार उद्धृत किया है।
3. आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, से प्रकाशित।
4. महाकविसम्बन्धिनां कुमारसम्भवादीनाम्। सा0चू0, पृ0 16
5. महाकविसम्बन्धिनां रघुवंशादीनाम्, न तु रामायणादीनाम्। सु0सा0, पृ0 17
6. येनास्निन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः
पञ्चषा वा महाकवय इति गण्यन्ते। ध्वन्यालोक, पृ0 94
7. क्वकार्यं शशलक्षणः क्व च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा
दोषाणां प्रशमाय मे श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम्।
किं वक्ष्यन्त्यापकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि कः खलु युवा धन्योऽधरं धास्यति।। लोचन, पृ0 186
8. (क) तत्र श्रृगारस्य द्वौ भेदौ, सम्भोगी विप्रलम्भश्च। तत्राद्यः
परस्परावलोकनालिङ्गनाधपानपरिचुम्बनाद्यनन्तभेदत्वाद–परिच्छेद्य इत्येक एव गण्यते। का0प्र0, पृ0 132
(ख) अपरस्त अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पञ्चविधः। का0प्र0,पृ0 136
9. मेघूदतम, उ0मे0, 47
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/7

11. कुमारसम्भवम्, 3/67
12. काव्यप्रकाश, 247
13. त्रिधेति व्रीडाजुगुप्साऽमङ्गलव्यञ्जकत्वाद्। का0प्र0 319
14. विक्रमोर्वशीयम्, 4/22
15. भाव्यमङ्गलादिसूचने कामशास्त्रस्थितौ च न दोषत्वम् वैमुख्याभावात् । शिवलिङ्ग–भगिनी–ब्रह्माण्डादिशब्देषु तु समुन्नीतगुप्तलक्षितेष्वसभ्यार्थानुपस्थितेर्नायं दोषः। सुधासागर टीका, पृ0 321
16. कुमारसम्भव, 3/55
17. काव्यप्रकाश, पृ0 327
18. कुमारसम्भव, 5/72
19. काव्यप्रकाश, श्रीनिवास शास्त्री, पृ0 293
20. विक्रमोर्वशीयम्, 4/7
21. रघुवंश, 1/21
22. कुमारसम्भव, 3/18
23. कुमारसम्भव, 5/71
24. अत्र त्वं शब्दानन्तरं चकारो युक्तः। का0प्र0, 394
25. विक्रमोर्वशीयम्, 4/62
26. विक्रमोर्वशीयम् 4/9
27. विक्रमोर्वशीयम् 1/10
28. रघुवंश, 1/2
29. कुमारसम्भव, 1/12
30. सुधासागर टीका, पृ0 321